

## Chapter चौबीस

### सांख्य दर्शन

इस अध्याय में कृष्ण यह उपदेश देते हैं कि किस तरह सांख्य विज्ञान से मन का मोह भगाया जा सकता है। यहाँ पर भगवान् पुनः उद्धव को प्रकृति विश्लेषण के विषय में उपदेश देते हैं। इस ज्ञान को आत्मसात् करके आत्मा मिथ्या द्वैतों पर आधारित अपने भ्रम को दूर कर सकता है।

सृष्टि के प्रारम्भ में द्रष्टा तथा दृश्य एक तथा अभिन्न होते हैं। तब यह परब्रह्म, जो अद्वितीय है तथा शब्द और मन से जिस तक पहुँचा नहीं जा सकता, दो में विभक्त हो जाता है—द्रष्टा या दर्शक अर्थात् चेतना या पुरुष तथा दृश्य अर्थात् वस्तु या प्रकृति। प्रकृति, जो तीन गुणों से युक्त है, नियामक पुरुष द्वारा परिक्षुब्ध की जाती है। तब महत् तत्त्व चेतना तथा कर्म की शक्तियों के साथ साथ प्रकट होता है। इनसे मिथ्या अहंकार का तीन रूपों में—सतो, रजो तथा तमोगुणी रूपों में—जन्म होता है। तमोगुणी मिथ्या अहंकार से इन्द्रिय अनुभूति के पंद्रह सूक्ष्म रूप तथा उसके बाद पन्द्रह भौतिक तत्त्व उत्पन्न होते हैं। रजोगुणी मिथ्या अहंकार से दस इन्द्रियाँ उत्पन्न होती हैं और सतोगुणी मिथ्या अहंकार से मन तथा इन्द्रियों के अधिष्ठाता ग्यारह देवता उत्पन्न होते हैं। इन सारे तत्त्वों के मेल से ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति होती

है, जिसके भीतर भगवान् अन्तर्यामी परमात्मा के रूप में अपना निवास बनाते हैं। इस परम स्रष्टा की नाभि से एक कमल निकलता है, जिस पर ब्रह्मा जन्म लेते हैं। रजोगुण से युक्त ब्रह्मा भगवत् कृपा से तपस्या करते हैं और इस तपस्या के बल पर वे ब्रह्माण्ड के सारे लोकों की सृष्टि करते हैं। स्वर्गलोक देवताओं के निमित्त है, बीच का आकाश भूतप्रेतों के लिए तथा पृथ्वी मनुष्यों एवं अन्य प्राणियों के लिए है। इन तीन लोकों के ऊपर महर्षियों के स्थान हैं और निम्न लोक असुरों, नागों आदि के लिए हैं। तीन गुणों पर आधारित कार्यों के द्वारा प्राप्त होने वाले लक्ष्य तीन मर्त्य लोकों तक ही सीमित होते हैं। योग, कठिन तपस्या तथा संन्यास जीवन के लोक महर, जनस्, तपस् तथा सत्य लोक कहलाते हैं। किन्तु भगवद्भक्ति का लक्ष्य भगवान् के ही धाम वैकुण्ठ में उनके चरणकमल हैं। भौतिक कार्य-कारण का यह ब्रह्माण्ड काल तथा तीनों गुणों के नियंत्रण में बना है। साथ ही, इस ब्रह्माण्ड में जो कुछ भी है, वह प्रकृति तथा उसके स्वामी के संयोग का फल है। जिस प्रकार एक सूक्ष्म से धीरे धीरे अत्यन्त स्थूल सृष्टि बनती है, उसी तरह संहार की विधि प्रकृति की स्थूलतम से सूक्ष्मतम अभिव्यक्ति के रूप में अग्रसर होती है, जिससे अन्त में केवल शाश्वत आध्यात्मिक वस्तु बचती है। यह परम आत्मा अपने ही भीतर, एकाकी रूप में तथा बिना किसी अन्त के स्थित रहता है। जो व्यक्ति इन विचारों पर ध्यान धरता है, उसका मन भौतिक द्वन्द्वों से मोहित नहीं होता। यह सांख्य विज्ञान, जिसका वर्णन सृजन तथा संहार के एकान्तर अनुक्रम में किया गया है, सारे संशयों तथा बन्धन को छिन्न करने वाला है।

श्रीभगवानुवाच

अथ ते सम्प्रवक्ष्यामि साङ्ख्यं पूर्वैर्विनिश्चितम् ।

यद्विज्ञाय पुमान्सद्यो जह्याद्वैकल्पिकं भ्रमम् ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-भगवान् उवाच—भगवान् ने कहा; अथ—अब; ते—तुमसे; सम्प्रवक्ष्यामि—कहूँगा; साङ्ख्यम्—सृष्टि के तत्त्वों के विकास का ज्ञान; पूर्वैः—पूर्ववर्ती विद्वानों द्वारा; विनिश्चितम्—सुनिश्चित किया गया; यत्—जिसे; विज्ञाय—जान कर; पुमान्—मनुष्य; सद्यः—तुरन्त; जह्यात्—त्याग सकता है; वैकल्पिकम्—मिथ्या द्वैत पर आधारित; भ्रमम्—भ्रम, मोह को।

भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा : अब मैं तुमसे सांख्य विज्ञान का वर्णन करूँगा जिसे प्राचीन विद्वानों ने पूर्णतया स्थापित किया है। इस विज्ञान को समझ लेने से मनुष्य तुरन्त भौतिक द्वैत के भ्रम को त्याग सकता है।

तात्पर्य : पिछले अध्याय में भगवान् बता चुके हैं कि मनुष्य मन को वश में करके तथा इसे

कृष्णभावनामृत में स्थिर करके भौतिक द्वैत को त्याग सकता है। इस अध्याय में सांख्य प्रणाली का वर्णन हुआ है, जिसमें पदार्थ तथा आत्मा के अन्तर को विस्तार से बतलाया गया है। इस ज्ञान को सुन कर मनुष्य अपने मन को आसानी से भौतिक कल्मष से हटाकर कृष्णभावनामृत के आध्यात्मिक पद पर स्थिर कर सकता है। यहाँ पर सांख्य दर्शन की जिस प्रणाली का उल्लेख हुआ है, वह *श्रीमद्भागवत* के तृतीय स्कन्ध में भगवान् कपिल द्वारा प्रस्तुत की गई है, बाद के भौतिकतावादी तथा मायावादियों द्वारा प्रस्तुत किये गये नास्तिक सांख्य द्वारा नहीं। भगवान् की शक्ति से उद्भूत होने वाले भौतिक तत्त्व प्रगतिशील अनुक्रम में विकसित होते हैं। किसी को मूर्खतावश यह नहीं सोचना चाहिए कि भगवान् की सहायता के बिना ही आदि भौतिक तत्त्व से ऐसा विकास प्रारम्भ होता है। यह कल्पनामूलक सिद्धान्त बद्ध जीवन के मिथ्या अहंकार से उत्पन्न होता है और स्थूल अज्ञान को जन्म देता है, जो भगवान् तथा उनके अनुयायियों को मान्य नहीं है।

आसीञ्ज्ञानमथो अर्थ एकमेवाविकल्पितम् ।

यदा विवेकनिपुणा आदौ कृतयुगेऽयुगे ॥ २ ॥

शब्दार्थ

आसीत्—था; ज्ञानम्—द्रष्टा; अथ उ—इस प्रकार; अर्थः—दृश्य; एकम्—एक; एव—केवल; अविकल्पितम्—अपृथक्; यदा—जब; विवेक—विवेक में; निपुणाः—दक्ष पुरुष; आदौ—प्रारम्भ में; कृत-युगे—सात्विक युग में; अयुगे—तथा इसके पूर्व संहार के समय।

प्रारम्भ में कृत युग के दौरान सारे लोग आध्यात्मिक विवेक में अत्यन्त निपुण होते थे और इससे भी पूर्व, संहार के समय एकमात्र द्रष्टा का अस्तित्व था, जो दृश्य पदार्थ से अभिन्न था।

तात्पर्य : कृत युग पहला युग है और सत्य युग भी कहलाता है, जिसमें ज्ञान पूर्ण होने के कारण अपने लक्ष्य से भिन्न नहीं है। आधुनिक समाज में ज्ञान नितान्त काल्पनिक तथा निरन्तर परिवर्तनशील है। प्रायः लोगों के सैद्धान्तिक विचारों तथा वास्तविकता में काफी अन्तर रहता है। किन्तु सत्य युग में लोग *विवेक निपुणाः* होते हैं; फलतः उनकी दृष्टि तथा वास्तविकता में कोई अन्तर नहीं होता। सत्य युग में आम जनता स्वरूपसिद्ध होती है। हर वस्तु को भगवान् की शक्ति के रूप में देखने के कारण वे अपने तथा अन्य जीवों के बीच कृत्रिम रूप से द्वैत उत्पन्न नहीं करते। सत्य युग की एकरूपता का यह अन्य पक्ष है। संहार के समय हर वस्तु भगवान् में लीन होकर शान्त हो जाती है और उस समय भी एकमात्र द्रष्टा भगवान् तथा भगवान् के भीतर स्थित ज्ञान की वस्तुओं में कोई अन्तर नहीं रहता। नित्य

आध्यात्मिक जगत में मुक्त हुए जीव कभी भी इस तरह लीन नहीं होते अपितु अपने अपने आध्यात्मिक स्वरूपों में सदा सदा बने रहते हैं। चूँकि वे स्वेच्छा से प्रेमवश भगवान् से एकाकार हैं, अतएव उनका धाम कभी भी विनष्ट नहीं होता।

तन्मायाफलरूपेण केवलं निर्विकल्पितम् ।  
वाङ्मनोऽगोचरं सत्यं द्विधा समभवद्बृहत् ॥ ३ ॥

शब्दार्थ

तत्—उस ( परम ); माया—प्रकृति का; फल—तथा इसकी अभिव्यक्तियों का भोक्ता; रूपेण—दो रूपों में; केवलम्—एक; निर्विकल्पितम्—अभिन्न; वाक्—वाणी; मनः—तथा मन तक; अगोचरम्—दुर्गम; सत्यम्—सच; द्विधा—दो; समभवत्—हो गया; बृहत्—परब्रह्म।

द्वैत से मुक्त रहते हुए तथा सामान्य वाणी एवं मन के लिए दुर्गम होने के कारण, उस एक परब्रह्म ने अपने को दो कोटियों में विभक्त कर लिया। ये हैं—भौतिक प्रकृति तथा जीव जो उस प्रकृति के स्वरूपों को भोगने का प्रयास करते हैं।

तात्पर्य : भौतिक प्रकृति तथा जीव दोनों ही भगवान् की शक्तियाँ हैं।

तयोरेकतरो ह्यर्थः प्रकृतिः सोभयात्मिका ।  
ज्ञानं त्वन्यतमो भावः पुरुषः सोऽभिधीयते ॥ ४ ॥

शब्दार्थ

तयोः—दोनों से; एकतरः—एक; हि—निस्सन्देह; अर्थः—जीव; प्रकृतिः—प्रकृति; सा—वह; उभय-आत्मिका—सूक्ष्म कारणों तथा उनके प्रकट उत्पादों से युक्त; ज्ञानम्—चेतना ( से युक्त हैं, जो ); तु—तथा; अन्यतमः—दूसरा वाला; भावः—जीव; पुरुषः—जीवात्मा; सः—वह; अभिधीयते—कहलाता है।

इन दो प्रकार के स्वरूपों में से एक तो भौतिक प्रकृति है, जिसमें दोनों सूक्ष्म कारण विद्यमान हैं और जो पदार्थ को व्यक्त करती है। दूसरा है जीव की चेतना जिसे भोक्ता कहते हैं।

तात्पर्य : श्रील जीव गोस्वामी के अनुसार यहाँ पर प्रकृति सूक्ष्म प्रधान का द्योतक है, जो बाद में महत-तत्त्व के रूप में प्रकट होता है।

तमो रजः सत्त्वमिति प्रकृतेरभवन्गुणाः ।  
मया प्रक्षोभ्यमाणायाः पुरुषानुमतेन च ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

तमः—तमो; रजः—रजो; सत्त्वम्—सतो; इति—इस प्रकार; प्रकृतेः—प्रकृति से; अभवन्—प्रकट हुए; गुणाः—गुण; मया—मेरे द्वारा; प्रक्षोभ्यमाणायाः—विक्षुब्ध किया गया; पुरुष—जीव की; अनुमतेन—इच्छापूर्ति के लिए; च—तथा।

जब भौतिक प्रकृति मेरी चितवन से विक्षुब्ध की गई, तो बद्धजीवों की शेष इच्छाओं की पूर्ति के लिए तीन गुण—सतो, रजो तथा तमोगुण—प्रकट हुए।

तात्पर्य : भगवान् भौतिक प्रकृति पर यह स्मरण दिलाने के लिए दृष्टिपात करते हैं कि बद्धजीवों ने अपना सकाम कर्म तथा मनोज्ञान का बन्धन खोलने का प्रयास नहीं किया, इसलिए पुनः सृष्टि करने की आवश्यकता है। भगवान् चाहते हैं कि बद्धजीव भगवान् से विहीन जीवन की व्यर्थता समझ कर, भगवत् प्रेम में कृष्णभावनाभावित होने का अवसर प्राप्त करें। भगवान् द्वारा दृष्टिपात करने के बाद प्रकृति के गुणों का उदय होता है और ये गुण एक-दूसरे पर विजय पाने की होड में शत्रुवत् बन जाते हैं। जन्म, पालन तथा संहार के बीच निरन्तर होड लगी रहती है। यद्यपि शिशु जन्म लेना चाहता है, किन्तु क्रूर माता गर्भपात द्वारा उसका वध कर देना चाहती है। यद्यपि हम खेतों के खरपतवार को नष्ट कर देना चाहें, किन्तु वे बारम्बार उग आते हैं। इसी तरह हम अपनी शारीरिक स्थिति यथावत् बनाये रखना चाहते हैं, फिर भी वह बिगड़ जाती है। इस तरह प्रकृति के गुणों के बीच निरन्तर होड लगी रहती है और जीव कृष्णभावनामृत के बिना ही इन गुणों के जोड़-तोड़ से असंख्य प्रकार से सुख भोगना चाहता है। पुरुषानुमतेन शब्द सूचित करता है कि भगवान् ऐसी भौतिक व्यर्थता के लिए मंच तैयार कर देते हैं ताकि बद्धजीवों को अन्त में भगवद्धाम वापस जाना पड़े।

तेभ्यः समभवत्सूत्रं महान्सूत्रेण संयुतः ।

ततो विकुर्वतो जातो योऽहङ्कारो विमोहनः ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

तेभ्यः—उन गुणों से; समभवत्—उत्पन्न हुआ; सूत्रम्—पहला प्रकृति का रूपान्तर जिसमें कर्म की शक्ति थी; महान्—ज्ञान-शक्ति से युक्त आदि प्रकृति; सूत्रेण—इस सूत्र तत्त्व से; संयुतः—एकसाथ जुड़ा; ततः—महत् से; विकुर्वतः—रूपान्तरित करते हुए; जातः—उत्पन्न किया गया; यः—जो; अहङ्कारः—मिथ्या अहंकार; विमोहनः—मोह का कारण।

इन गुणों से महत् तत्त्व के साथ साथ आदि सूत्र उत्पन्न हुआ। महत् तत्त्व के रूपान्तर से मिथ्या अहंकार उत्पन्न हुआ जो जीवों के मोह का कारण है।

तात्पर्य : श्रील श्रीधर स्वामी के अनुसार, सूत्र प्रकृति का पहला रूपान्तर है, जो कर्म-शक्ति को प्रकट करता है और इसके साथ महत् तत्त्व रहता है, जो ज्ञान-शक्ति से युक्त होता है। भौतिक जगत में मनुष्य का असली ज्ञान कर्म तथा मनोज्ञान से आवृत रहता है। ज्योंही ईश्वर के प्रति भक्ति में शिथिलता आती है ये दोनों प्रवृत्तियाँ स्वतः उत्पन्न होती हैं, जिस तरह प्रकाश के क्षीण होने से अँधेरा अपने आप

बढ़ जाता है।

वैकारिकस्तैजसश्च तामसश्चेत्यहं त्रिवृत् ।  
तन्मात्रेन्द्रियमनसां कारणं चिदचिन्मयः ॥ ७ ॥

शब्दार्थ

वैकारिकः—सतोगुण में; तैजसः—रजोगुण में; च—तथा; तामसः—तमोगुण में; च—भी; इति—इस प्रकार; अहम्—मिथ्या अहंकार; त्रि-वृत्—तीन श्रेणियों में; तत्-मात्र—इन्द्रिय-विषयों के सूक्ष्म रूपों के; इन्द्रिय—इन्द्रियों के; मनसाम्—तथा मन के; कारणम्—कारण; चित्-अचित्—आत्मा तथा पदार्थ दोनों; मयः—से युक्त।

मिथ्या अहंकार जो भौतिक अनुभूति ( तन्मात्रा ), इन्द्रियों तथा मन का कारण है आत्मा तथा पदार्थ दोनों को घेर लेता है और सतो, रजो तथा तमो—इन तीन गुणों को प्रकट होता है।

तात्पर्य : इस सन्दर्भ में चिद्-अचिन्-मय शब्द महत्त्वपूर्ण है। मिथ्या अहंकार नित्य चेतन आत्मा तथा अनित्य अचेतन शरीर का भ्रामक संमेल है। चूँकि आत्मा ईश्वर की सृष्टि का अवैध दोहन करना चाहता है, अतः वह प्रकृति के तीन गुणों से मोहग्रस्त हो जाता है और भौतिक जगत में मोहमय पहचान बनाता है। भोग के प्रयास में वह मोह की जटिलताओं में उलझता जाता है और अपनी चिन्ता को ही बढ़ाता है। इस निराशाजनक स्थिति से पार पाने के लिए शुद्ध कृष्णभावनामृत अंगीकार करना चाहिए जिसमें भगवान् की प्रसन्नता ही जीवन का एकमात्र लक्ष्य बन जाती है।

अर्थस्तन्मात्रिकाज्जज्ञे तामसादिन्द्रियाणि च ।  
तैजसाद्देवता आसन्नेकादश च वैकृतात् ॥ ८ ॥

शब्दार्थ

अर्थः—स्थूल तत्त्व; तत्-मात्रिकात्—तन्मात्राओं अर्थात् सूक्ष्म अनुभूतियों से; जज्ञे—उत्पन्न हो गया; तामसात्—तमोगुणी अहंकार से; इन्द्रियाणि—इन्द्रियाँ; च—तथा; तैजसात्—रजोगुणी अहंकार से; देवताः—देवतागण; आसन्—उत्पन्न हुए; एकादश—ग्यारह; च—तथा; वैकृतात्—सतोगुणी अहंकार से।

तमोगुणी अहंकार से सूक्ष्म शारीरिक अनुभूतियाँ ( तन्मात्राएँ ) उत्पन्न हुईं जिनसे सूक्ष्म तत्त्व उत्पन्न हुए। रजोगुणी अहंकार से इन्द्रियाँ उत्पन्न हुईं तथा सतोगुणी अहंकार से ग्यारह देवता उत्पन्न हुए।

तात्पर्य : तमोगुणी अहंकार से ध्वनि, उसे ग्रहण करने वाली श्रवणेन्द्रिय तथा ध्वनि का माध्यम आकाश उत्पन्न होते हैं। इसके बाद स्पर्श, वायु तथा स्पर्शेन्द्रिय की उत्पत्ति होती है और इस तरह सूक्ष्म से लेकर स्थूल तक सारे तत्त्वों तथा उनकी अनुभूतियों का जन्म होता है। चूँकि इन्द्रियाँ अपने कर्म में

लगी रहती हैं, अतएव ये रजोगुणी अहंकार से उत्पन्न होती हैं। सतोगुणी अहंकार से ग्यारह देवता उत्पन्न होते हैं—दिशाओं के देवता, वायु, सूर्य, वरुण, अश्विनी कुमार, अग्नि, इन्द्र, उपेन्द्र, मित्र, ब्रह्मा तथा चन्द्र।

मया सञ्चोदिता भावाः सर्वे संहत्यकारिणः ।  
अण्डमुत्पादयामासुर्ममायतनमुत्तमम् ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

मया—मेरे द्वारा; सञ्चोदिताः—प्रेरित; भावाः—तत्त्व; सर्वे—सभी; संहत्य—संमेल से; कारिणः—कर्म करते हुए; अण्डम्—ब्रह्माण्ड; उत्पादयाम् आसुः—उत्पन्न किया; मम—मेरा; आयतनम्—आवास; उत्तमम्—उत्तम।

मेरे द्वारा प्रेरित ये सारे तत्त्व सुसम्बद्ध रूप में काम करने के लिए परस्पर जुड़ गये तथा उन्होंने ब्रह्माण्ड को जन्म दिया जो मेरा सर्वोत्तम आवास है।

तस्मिन्नहं समभवमण्डे सलिलसंस्थितौ ।  
मम नाभ्यामभूत्पद्मं विश्वाख्यं तत्र चात्मभूः ॥ १० ॥

शब्दार्थ

तस्मिन्—उसमें; अहम्—मैं; समभवम्—प्रकट हुआ; अण्डे—ब्रह्माण्ड में; सलिल—कारणार्णव के जल में; संस्थितौ—स्थित; मम—मेरी; नाभ्याम्—नाभि से; अभूत्—उत्पन्न हुआ; पद्मम्—कमल; विश्व-आख्यम्—विश्व नामक; तत्र—वहाँ; च—तथा; आत्म-भूः—स्वयंभू ब्रह्मा।

मैं उस अण्डे के भीतर प्रकट हुआ जो कारणार्णव जल में तैर रहा था और मेरी नाभि से विश्व-कमल निकला जो स्वयंभू ब्रह्मा का जन्मस्थान है।

तात्पर्य : यहाँ पर भगवान् श्री नारायण की दिव्य लीला के रूप में अपने प्राकट्य का वर्णन कर रहे हैं। भगवान् नारायण ब्रह्माण्ड के भीतर प्रवेश तो करते हैं किन्तु अपने आनन्द तथा ज्ञान के दिव्य शरीर को त्यागते नहीं। किन्तु भगवान् के नाभि-कमल से उत्पन्न ब्रह्मा का भौतिक शरीर होता है। यद्यपि ब्रह्मा सर्वाधिक शक्तिशाली योगी हैं, किन्तु उनका भौतिक संसार में सर्वव्यापी शरीर भौतिक है, जबकि भगवान् हरि अर्थात् नारायण का शरीर सदैव दिव्य होता है।

सोऽसृजत्तपसा युक्तो रजसा मदनुग्रहात् ।  
लोकान्सपालान्विश्वात्मा भूर्भुवः स्वरिति त्रिधा ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

सः—उसने, ब्रह्मा ने; असृजत्—उत्पन्न किया; तपसा—अपनी तपस्या से; युक्तः—युक्त; रजसा—रजोगुणी शक्ति से; मत्—मेरी; अनुग्रहात्—कृपा से; लोकान्—विभिन्न लोकों को; स-पालान्—अधिष्ठाता देवताओं सहित; विश्व—विश्व का; आत्मा—आत्मा; भूः भुवः स्वः इति—भूर, भुवर तथा स्वर नामक; त्रिधा—तीन विभाग।

रजोगुण से युक्त ब्रह्माण्ड की आत्मा ब्रह्माजी ने मेरी दया से महान् तपस्या की और इस तरह

भूर, भुवर तथा स्वर नामक तीन लोकों तथा उनके अधिष्ठाता देवताओं की रचना की।

देवानामोक आसीत्स्वर्भूतानां च भुवः पदम् ।

मर्त्यादीनां च भूर्लोकः सिद्धानां त्रितयात्परम् ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

देवानाम्—देवताओं का; ओकः—घर; आसीत्—बना; स्वः—स्वर्ग; भूतानाम्—भूतप्रेतों का; च—तथा; भुवः—भुवर; पदम्—स्थान; मर्त्य-आदीनाम्—सामान्य मर्त्य लोगों तथा अन्य प्राणियों का; च—तथा; भूः लोकः—भूर नामक लोक; सिद्धानाम्—मुक्ति चाहने वालों का (स्थान); त्रितयात्—ये तीनों विभाग; परम्—परे।

स्वर्ग की स्थापना देवताओं के निवास रूप में, भुवर्लोक की भूतप्रेतों के निवास रूप में तथा पृथ्वी-लोक की स्थापना मनुष्यों तथा अन्य मर्त्य प्राणियों के स्थान के रूप में की गई। वे योगी जो मोक्ष के लिए उद्योगशील रहते हैं, इन तीनों विभागों से परे भेज दिये जाते हैं।

तात्पर्य : इन्द्र-लोक तथा चन्द्र-लोक जैसे लोक अत्यन्त पवित्र सकाम कर्मियों के स्वर्गिक भोग के लिए हैं। किन्तु सत्य-लोक, महर-लोक, जनो-लोक तथा तपो-लोक उन लोगों के लिए हैं, जो मोक्ष के लिए पूर्णतया उद्योगशील रहते हैं। चैतन्य महाप्रभु अचिन्त्य रूप से दयालु हैं कि वे कलियुग के अधम से अधम पापियों को इन चारों लोकों से ऊपर, यहाँ तक कि वैकुण्ठ से भी परे, गोलोक वृन्दावन नामक परब्योम-स्थित भगवान् कृष्ण के परम लोक को भेज देते हैं। श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर बतलाते हैं कि स्वर्ग देवताओं का निवासस्थान है, पृथ्वी-लोक मनुष्यों का निवासस्थान है तथा इन दोनों के बीच दोनों ही श्रेणी के जीवों का अस्थायी निवास स्थान है।

अधोऽसुराणां नागानां भूमेरोकोऽसृजत्प्रभुः ।

त्रिलोक्यां गतयः सर्वाः कर्मणां त्रिगुणात्मनाम् ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

अधः—नीचे; असुराणाम्—असुरों का; नागानाम्—स्वर्गिक सर्पों का; भूमेः—पृथ्वी से; ओकः—निवासस्थान; असृजत्—रचा; प्रभुः—ब्रह्मा ने; त्रि-लोक्याम्—तीनों लोकों का; गतयः—गन्तव्य; सर्वाः—सारे; कर्मणाम्—सकाम कर्मों का; त्रि-गुण-आत्मनाम्—तीनों गुणों में सम्मिलित।

ब्रह्मा ने पृथ्वी के अधोभाग को असुरों तथा नागों के लिए बनाया। इस तरह प्रकृति के तीनों गुणों के अन्तर्गत सम्पन्न होने वाले विभिन्न प्रकार के कर्मों के लिए संगत फलों के रूप में तीनों



लोकों के गन्तव्य व्यवस्थित किये गये ।

योगस्य तपसश्चैव न्यासस्य गतयोऽमलाः ।

महर्जनस्तपः सत्यं भक्तियोगस्य मद्गतिः ॥ १४ ॥

शब्दार्थ

योगस्य—योग का; तपसः—महान् तपस्या का; च—तथा; एव—निश्चय ही; न्यासस्य—संन्यास आश्रम का; गतयः—गन्तव्य; अमलाः—स्वच्छ; महः—महर्; जनः—जनस्; तपः—तपस; सत्यम्—सत्य; भक्ति-योगस्य—भक्ति का; मत्—मेरा; गतिः—गन्तव्य ।

योग, महान् तप तथा संन्यास जीवन से महर्लोक, जनोलोक, तपोलोक तथा सत्यलोक के शुद्ध गन्तव्य प्राप्त किये जाते हैं । किन्तु भक्तियोग से मेरा दिव्य धाम प्राप्त होता है ।

तात्पर्य : श्रील जीव गोस्वामी बतलाते हैं कि इस श्लोक में आया शब्द *तपसः* ब्रह्मचारियों तथा वानप्रस्थों द्वारा सम्पन्न तपस्याओं का द्योतक है । वह ब्रह्मचारी जो अपने जीवन की किसी विशेष अवस्था में ब्रह्मचर्य का अभ्यास करता है, महर्-लोक प्राप्त करता है और जो व्यक्ति आजीवन ब्रह्मचर्य का पालन करता है, वह जनो-लोक प्राप्त करता है । वानप्रस्थ आश्रम का ठीक से पालन करने पर मनुष्य तपो-लोक प्राप्त कर सकता है और संन्यासी सत्य-लोक को जाता है । ये विभिन्न गन्तव्य योग-पद्धति में उसकी गम्भीरता पर निर्भर करते हैं । *भागवत* के तृतीय स्कन्ध में ब्रह्माजी देवताओं से बतलाते हैं, “वैकुण्ठ के निवासी नीलमणि, पद्मा तथा स्वर्ण से निर्मित अपने अपने विमानों में यात्रा करते हैं । यद्यपि वे बड़े बड़े नितम्बों तथा सुन्दर हास्ययुक्त मुखमण्डलों वाली अपनी प्रेयसियों से घिरे रहते हैं, वे उनके रजोगुणी हर्ष तथा सुन्दर लावण्य से द्रवित नहीं हो सकते ।” (भागवत ३.१५.२०) इस तरह वैकुण्ठ-लोक में वहाँ के निवासियों को निजी तुष्टि की कोई इच्छा नहीं रहती क्योंकि वे भगवत्प्रेम से पूरी तरह तुष्ट रहते हैं । चूँकि वे केवल भगवान् के आनन्द के बारे में ही सोचते हैं, अतएव वहाँ धोखा, चिन्ता, काम, निराशा इत्यादि की कोई सम्भावना नहीं रहती । *भगवद्गीता* (१८.६२) में कहा गया है—

*तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत ।*

*तत्प्रसादात् परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम् ॥*

“हे भारत! सब प्रकार से उसी की शरण में जाओ । उसकी कृपा से तुम परम शान्ति को, परम तथा नित्य धाम को प्राप्त करोगे ।”

मया कालात्मना धात्रा कर्मयुक्तमिदं जगत् ।  
गुणप्रवाह एतस्मिन्मज्जति निमज्जति ॥ १५ ॥

शब्दार्थ

मया—मेरे द्वारा; काल-आत्मना—काल-शक्ति से युक्त; धात्रा—स्रष्टा; कर्म-युक्तम्—सकाम कर्म से पूर्ण; इदम्—यह;  
जगत्—संसार; गुण-प्रवाहे—गुणों की प्रबल धार में; एतस्मिन्—इस; उन्मज्जति—ऊपर उठता है; निमज्जति—डूबता है।

काल-शक्ति के रूप में कर्म करते हुए मुझ परम स्रष्टा द्वारा इस जगत में सकाम कर्म के सारे फलों को व्यवस्थित किया गया है। इस तरह प्राणी प्रकृति के गुणों के प्रबल प्रवाह की सतह पर कभी ऊपर उठता है, तो कभी फिर से डूब जाता है।

तात्पर्य : उन्मज्जति उच्चतर लोकों को जाने का सूचक है, जैसाकि पिछले श्लोकों में उल्लेख हुआ है और निमज्जति सूचक है अपवित्र कार्यों द्वारा कष्टप्रद जीवन में डूबने का। दोनों ही स्थितियों में मनुष्य संसाररूपी प्रबल नदी में डूबता रहता है, जो उसे अपने निजी घर भगवद्धाम से दूर ले जाती है।

अणुर्बृहत्कृशः स्थूलो यो यो भावः प्रसिध्यति ।  
सर्वोऽप्युभयसंयुक्तः प्रकृत्या पुरुषेण च ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

अणुः—लघु; बृहत्—विशाल; कृशः—दुबला; स्थूलः—मोटा; यः यः—जो जो; भावः—अभिव्यक्ति; प्रसिध्यति—स्थापित की जाती है; सर्वः—सभी; अपि—निस्सन्देह; उभय—दोनों से; संयुक्तः—जुड़ा हुआ; प्रकृत्या—प्रकृति द्वारा; पुरुषेण—भोक्ता आत्मा द्वारा; च—तथा।

इस जगत में जो भी स्वरूप विद्यमान दिखते हैं—चाहे वे छोटे हों या बड़े, दुबले हों या मोटे—उनमें भौतिक प्रकृति तथा इसका भोक्ता आत्मा दोनों रहते हैं।

यस्तु यस्यादिरन्तश्च स वै मध्यं च तस्य सन् ।  
विकारो व्यवहारार्थो यथा तैजसपार्थिवाः ॥ १७ ॥

शब्दार्थ

यः—जो ( कारण ); तु—तथा; यस्य—जिस ( फल ) का; आदिः—प्रारम्भ; अन्तः—अन्त; च—तथा; सः—वह; वै—निस्सन्देह; मध्यम्—बीच का; च—तथा; तस्य—उस वस्तु का; सन्—होने से ( असली ); विकारः—रूपान्तर; व्यवहार-अर्थः—सामान्य प्रयोजनों के लिए; यथा—जिस तरह; तैजस—स्वर्ण से बनी वस्तुएँ ( जो स्वयं अग्नि से प्राप्त हैं ); पार्थिवः—पृथ्वी से उत्पन्न वस्तुएँ।

स्वर्ण तथा मिट्टी मूलतः अवयव रूप में विद्यमान हैं। स्वर्ण से सोने के गहने यथा कंगन तथा बालियाँ और मिट्टी से बर्तन तथा तश्तरियाँ बनाई जा सकती हैं। स्वर्ण तथा मिट्टी जो कि मूल अवयव हैं, वे उनसे बनने वाले पदार्थों से पहले से विद्यमान रहते हैं और जब अन्त में इन पदार्थों

को नष्ट किया जाता है, तो वे मूल अवयव—स्वर्ण तथा मिट्टी—बने रहते हैं। इस तरह प्रारम्भ तथा अन्त में अवयव वर्तमान तो रहते ही हैं, वे बीच में भी कंगन, बाली, पात्र अथवा तशतरी के रूप में उपस्थित रहते हैं, जिन्हें हम ये नाम सुविधा के लिए देते हैं। इसलिए हम यह समझ सकते हैं कि चूँकि अवयवरूपी कारण पदार्थ की सृष्टि के पूर्व तथा पदार्थ के विनाश के बाद विद्यमान रहता है, वही अवयवरूपी कारण व्यक्त अवस्था में भी उपस्थित रहेगा और इस पदार्थ को उसके असली रूप में पुष्ट करेगा।

**तात्पर्य :** भगवान् यहाँ पर यह बतलाते हैं कि आदि कारण कार्य में उपस्थित रहता है। इसके लिए वे स्वर्ण तथा मिट्टी का दृष्टान्त प्रस्तुत करते हैं, जो सोने तथा मिट्टी की बनी हुई कई विविध वस्तुओं में कारणरूपी अवयवों का कार्य करते हैं। हम अपनी सुविधा के लिए इन क्षणभंगुर वस्तुओं के विविध नाम रख लेते हैं यद्यपि उनका मूल स्वभाव उसी अवयव का ही बना रहता है, क्षणिक वस्तु का नहीं होता।

यदुपादाय पूर्वस्तु भावो विकुरुतेऽपरम् ।

आदिरन्तो यदा यस्य तत्सत्यमभिधीयते ॥ १८ ॥

शब्दार्थ

यत्—जो ( रूप ); उपादाय—अवयव कारण को मान कर; पूर्वः—पहले वाला कारण ( यथा महत् तत्त्व ); तु—तथा; भावः—वस्तु; विकुरुते—विकार के रूप में उत्पन्न करता है; अपरम्—दूसरी वस्तु ( यथा अहंकार ); आदिः—प्रारम्भ; अन्तः—अन्त; यदा—जब; यस्य—जिसका ( कार्य का ); तत्—उस ( कारण ); सत्यम्—असली; अभिधीयते—कहा जाता है।

किसी आवश्यक अवयव से बनी हुई भौतिक वस्तु रूपान्तर द्वारा अन्य भौतिक वस्तु उत्पन्न करती है। इस तरह एक उत्पन्न वस्तु अन्य उत्पन्न वस्तु का कारण एवं आधार बनती है। इस तरह कोई विशेष वस्तु इस हेतु असली कहलाती है क्योंकि यह उस दूसरी वस्तु के मूल स्वभाव से युक्त होती है, जो इसकी आदि तथा अन्तिम अवस्था होती है।

**तात्पर्य :** इस श्लोक के तात्पर्य को मिट्टी के बने पात्र का उदाहरण लेकर आसानी से समझा जा सकता है। मिट्टी का पात्र मिट्टी के लोंदे से बना होता है और यह मिट्टी पृथ्वी से प्राप्त होती है। इस प्रकार पृथ्वी आदि अवयव है, जिससे मिट्टी का लोंदा बना है और यह मिट्टी का लोंदा ही मिट्टी के पात्र का आदि कारण है। जब यह पात्र नष्ट हो जाता है, तो यह पुनः मिट्टी की उपाधि धारण कर लेता है और अन्त में अपने आदि कारण पृथ्वी में मिल जाता है। मिट्टी के पात्र के सन्दर्भ में मिट्टी आदि तथा

अन्तिम अवस्था है। इस प्रकार पात्र असली कहलाता है क्योंकि इसमें मिट्टी के आवश्यक गुण पाये जाते हैं, जो पात्र के आदि और अन्त तक विद्यमान रहती है। इसी तरह पृथ्वी मिट्टी के पहले और बाद में भी विद्यमान रहती है, अतः मिट्टी को असली माना जा सकता है क्योंकि इसमें पृथ्वी के मुख्य गुण पाये जाते हैं, जो मिट्टी के अस्तित्व के पूर्व तथा पश्चात् भी विद्यमान रहती है। इसी तरह पृथ्वी तथा अन्य तत्त्व महत्-तत्त्व से उत्पन्न होते हैं, जो तत्त्वों से पूर्व और पश्चात् विद्यमान रहते हैं। इन्हें असली माना जा सकता है क्योंकि इनमें महत् तत्त्व के मुख्य गुण पाये जाते हैं। महत् तत्त्व ही अन्ततोगत्वा समस्त कारणों के कारण भगवान् की सृष्टि का कारण है, जो कि समस्त वस्तुओं के संहार के बाद भी विद्यमान रहते हैं। परब्रह्म साक्षात् भगवान् हैं, जो समस्त वस्तुओं को शनै शनै अर्थ तथा गुण प्रदान करते हैं।

प्रकृतिर्यस्योपादानमाधारः पुरुषः परः ।

सतोऽभिव्यञ्जकः कालो ब्रह्म तत्रितयं त्वहम् ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

प्रकृतिः—भौतिक प्रकृति; यस्य—जिसका ( ब्रह्माण्ड का उत्पन्न स्वरूप ); उपादानम्—अवयव कारण; आधारः—नींव; पुरुषः—भगवान्; परः—परम; सतः—असली ( स्वभाव ); अभिव्यञ्जकः—क्षुब्ध करने वाला; कालः—समय; ब्रह्म—परब्रह्म; तत्—यह; त्रितयम्—तीन का समूह; तु—लेकिन; अहम्—मैं।

भौतिक ब्रह्माण्ड को असली माना जा सकता है क्योंकि इसका आदि अवयव तथा इसकी अन्तिम अवस्था प्रकृति है। महाविष्णु प्रकृति के विश्राम स्थल हैं, जो काल की शक्ति से प्रकट होते हैं। इस तरह प्रकृति, सर्वशक्तिमान विष्णु तथा काल मुझ परब्रह्म से भिन्न नहीं हैं।

तात्पर्य : भौतिक प्रकृति भगवान् की शक्ति है, महाविष्णु स्वांश हैं और काल भगवान् की क्रिया को दर्शाता है। इस तरह काल तथा प्रकृति सदैव उस भगवान् के अधीन हैं, जो अपनी शक्तियों तथा स्वांशों द्वारा सारी वस्तुओं का सृजन, पालन और संहार करने वाले हैं। दूसरे शब्दों में, कृष्ण परब्रह्म हैं क्योंकि सारा जगत उन्हीं में समाया है।

सर्गः प्रवर्तते तावत्पौर्वापर्येण नित्यशः ।

महान्गुणविसर्गार्थः स्थित्यन्तो यावदीक्षणम् ॥ २० ॥

शब्दार्थ

सर्गः—सृष्टि; प्रवर्तते—विद्यमान रहती है; तावत्—तब तक; पौर्व-अपर्येण—माता-पिता तथा सन्तानों के रूप में; नित्यशः—निरन्तर; महान्—दानी; गुण-विसर्ग—गुणों के विविध रूप का; अर्थः—प्रयोजन; स्थिति-अन्तः—इसके अस्तित्व के अन्त तक; यावत्—जब तक; ईक्षणम्—भगवान् का दृष्टिपात ।

जब तक भगवान् प्रकृति पर दृष्टिपात करते रहते हैं तब तक भौतिक जगत विद्यमान रहता जाता है और सृजन के महान् तथा विविध प्रवाह को प्रसव द्वारा सतत प्रकट करता रहता है ।

तात्पर्य : यद्यपि काल-शक्ति से प्रेरित महत तत्त्व ही इस जगत का अवयव कारण है, किन्तु यहाँ स्पष्ट बतलाया गया है कि भगवान् स्वयं ही इस जगत के एकमात्र परम कारण हैं । भगवान् के दृष्टिपात के बिना काल तथा प्रकृति शक्तिहीन रहते हैं । वे बद्धजीवों के लिए, जो विशेष माता-पिता की सन्तानों एवं विशेष सन्तानों के माता-पिता के रूप में चौरासी लाख जीव योनियों से होते हुए जीवन का भोग करना चाहते हैं, इन्द्रियतृप्ति हेतु असंख्य भौतिक वस्तुएँ उत्पन्न करते हैं ।

विराण्मयासाद्यमानो लोककल्पविकल्पकः ।

पञ्चत्वाय विशेषाय कल्पते भुवनैः सह ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

विराट्—विश्वरूप; मया—मेरे द्वारा; आसाद्यमानः—व्याप्त; लोक—लोकों का; कल्प—बारम्बार सृष्टि, पालन तथा संहार का; विकल्पकः—विविधता प्रकट करते हुए; पञ्चत्वाय—पाँच तत्त्वों की सृष्टि का तात्त्विक प्राकट्य; विशेषाय—किस्मों में; कल्पते—प्रदर्शित करने में सक्षम है; भुवनैः—विभिन्न लोकों के; सह—साथ ।

मैं विश्वरूप का आधार हूँ जो लोकों के बारम्बार सृजन, पालन तथा संहार के माध्यम से अनन्त विविधता को प्रदर्शित करता है । मेरे विश्वरूप में सारे लोक अपनी सुप्त अवस्था में रहते हैं और मेरा यह विश्वरूप पाँच तत्त्वों के समन्वयकारी संयोग से नाना प्रकार के जगत्तों को प्रकट करता है ।

तात्पर्य : श्रील श्रीधर स्वामी के अनुसार मया शब्द भगवान् के कालरूप का द्योतन करता है ।

अन्ने प्रलीयते मर्त्यमन्नं धानासु लीयते ।

धाना भूमौ प्रलीयन्ते भूमिर्गन्धे प्रलीयते ॥ २२ ॥

अप्सु प्रलीयते गन्ध आपश्च स्वगुणे रसे ।

लीयते ज्योतिषि रसो ज्योती रूपे प्रलीयते ॥ २३ ॥

रूपं वायौ स च स्पर्शं लीयते सोऽपि चाम्बरे ।

अम्बरं शब्दतन्मात्र इन्द्रियाणि स्वयोनिषु ॥ २४ ॥

योनिर्वैकारिके सौम्य लीयते मनसीश्वरे ।

शब्दो भूतादिमप्येति भूतादिर्महति प्रभुः ॥ २५ ॥

स लीयते महान्स्वेषु गुणेषु गुणवत्तमः ।

तेऽव्यक्ते सम्प्रलीयन्ते तत्काले लीयतेऽव्यये ॥ २६ ॥

कालो मायामये जीवे जीव आत्मनि मय्यजे ।

आत्मा केवल आत्मस्थो विकल्पापायलक्षणः ॥ २७ ॥

#### शब्दार्थ

अन्ने—भोजन में; प्रलीयते—लीन हो जाता है; मर्त्यम्—मर्त्य शरीर; अन्नम्—भोजन; धानासु—बीजों के भीतर; लीयते—लीन हो जाता है; धानाः—बीज; भूमौ—पृथ्वी में; प्रलीयन्ते—लीन हो जाते हैं; भूमिः—पृथ्वी; गन्धे—गन्ध में; प्रलीयते—लीन हो जाती है; अप्सु—जल में; प्रलीयते—लीन हो जाती है; गन्धः—गन्ध; आपः—जल; च—तथा; स्व-गुणे—अपने गुण में; रसे—स्वाद में; लीयते—लीन हो जाता है; ज्योतिषि—अग्नि में; रसः—स्वाद; ज्योतिः—अग्नि; रूपे—स्वरूप में; प्रलीयते—लीन हो जाती; रूपम्—स्वरूप; वायौ—वायु में; सः—वह; च—तथा; स्पर्शे—स्पर्श में; लीयते—लीन हो जाता है; सः—वह; अपि—भी; च—तथा; अम्बरे—आकाश में; अम्बरम्—आकाश; शब्द—ध्वनि में; तत्-मात्रे—संगत सूक्ष्म अनुभूति में; इन्द्रियाणि—इन्द्रियाँ; स्व-योनिषु—अपने स्रोतों, देवताओं में; योनिः—देवता; वैकारिके—सतो गुणी अहंकार में; सौम्य—हे उद्धव; लीयते—लीन हो जाता है; मनसि—मन में; ईश्वरे—नियन्ता रूप; शब्दः—शब्द; भूत-आदिम्—आदि अहंकार में; अप्येति—लीन हो जाता है; भूत-आदिः—मिथ्या अहंकार; महति—समग्र प्रकृति में; प्रभुः—शक्तिमान; सः—वह; लीयते—लीन हो जाता है; महान्—समग्र प्रकृति; स्वेषु—अपने ही; गुणेषु—तीन गुणों में; गुण-वत्-तमः—इन गुणों का परम धाम होने से; ते—वे; अव्यक्ते—प्रकृति के अव्यक्त रूप में; सम्प्रलीयन्ते—पूर्णतया लीन हो जाते हैं; तत्—उस; काले—समय में; लीयते—विलीन हो जाता है; अव्यये—अव्यय; कालः—समय; माया-मये—दिव्य ज्ञान से पूर्ण; जीवे—समस्त जीवों को गति देने वाले परमेश्वर में; जीवः—वह प्रभु; आत्मनि—परमात्मा में; मयि—मुझमें; अजे—अजन्मा; आत्मा—आत्मा; केवलः—अकेले; आत्म-स्थः—स्वयं में स्थित; विकल्प—सृष्टि; अपाय—तथा संहार द्वारा; लक्षणः—गुणों से युक्त।

संहार के समय जीव का मर्त्य शरीर भोजन में लीन हो जाता है। भोजन अन्न में लीन होता है और अन्न पुनः पृथ्वी में लीन हो जाते हैं। पृथ्वी अपने सूक्ष्म अनुभूति गंध में लीन हो जाती है। गंध जल में और जल अपने गुण स्वाद में लीन हो जाता है। स्वाद अग्नि में और अग्नि रूप में लीन हो जाती है। रूप स्पर्श में और स्पर्श आकाश में लीन हो जाता है। आकाश अन्ततः ध्वनि अनुभूति में लीन होता है। सारी इन्द्रियाँ अपने उद्गम रूप अधिष्ठाता देवों में लीन हो जाती हैं। हे सौम्य उद्धव, ये इन्द्रियाँ नियामक मन में लीन होती हैं, जो सात्त्विक अहंकार में लीन हो जाता है। शब्द तमोगुणी अहंकार में एकाकार हो जाते हैं और सर्वशक्तिमान तथा समस्त शारीरिक तत्त्वों में प्रथम जाना जाने वाला अहंकार समग्र प्रकृति में लीन हो जाता है। तीन गुणों की धात्री समग्र प्रकृति गुणों में लीन हो जाती है। तब ये गुण प्रकृति के अव्यक्त रूप में लीन होते हैं और यह अव्यक्त रूप काल में लीन हो जाता है। काल परमेश्वर में लीन हो जाता है, जो सर्वज्ञ महापुरुष के रूप में, समस्त जीवों के आदि प्रेरक के रूप में रहते हैं। समस्त जीवन का उद्गम मुझ अजन्मा परमात्मा में जो अपने भीतर स्थित रह कर अकेला रहता है, लीन हो जाता है। उन्हीं से समस्त सृजन तथा संहार प्रकट होते हैं।

**तात्पर्य :** भौतिक जगत का संहार सृजन-क्रिया का विपर्यय है। हर वस्तु भगवान् के भीतर आश्रय पाने के लिए उनमें लीन हो जाती है, जो अपने परम पद में पूर्ण बने रहते हैं।

एवमन्वीक्षमाणस्य कथं वैकल्पिको भ्रमः ।  
मनसो हृदि तिष्ठेत व्योम्नीवाकोदये तमः ॥ २८ ॥

शब्दार्थ

एवम्—इस तरह से; अन्वीक्षमाणस्य—ध्यान से देखने वाले का; कथम्—कैसे; वैकल्पिकः—द्वैत पर आधारित; भ्रमः—मोह; मनसः—उसके मन का; हृदि—हृदय में; तिष्ठेत—बना रह सकता है; व्योम्नि—आकाश में; इव—जिस तरह; अर्क—सूर्य के; उदये—उदय होने पर; तमः—अंधकार।

जिस तरह उदय होता सूर्य आकाश के अंधकार को हटा देता है, उसी तरह विश्व-संहार का यह विज्ञान गम्भीरजनों के मन से भ्रामक द्वैत को हटा देता है। यदि किसी तरह हृदय के भीतर भ्रम प्रवेश कर भी जाता है, तो वह वहाँ ठहर नहीं सकता।

**तात्पर्य :** जिस तरह चमकीला सूर्य आकाश से सारा अंधकार हटा देता है, उसी तरह उद्धव से कृष्ण द्वारा कहे गये इस ज्ञान को समझ लेने पर मन द्वारा कल्पित सारा अज्ञान मिट जाता है। तब कोई भी भौतिक शरीर को आत्मा नहीं स्वीकार करेगा। यदि किसी की चेतना के भीतर क्षण-भर के लिए ऐसा भ्रम उत्पन्न भी होता है, तो आध्यात्मिक ज्ञान के उदय होने से यह मिट जायेगा।

एष साङ्ख्यविधिः प्रोक्तः संशयग्रन्थिभेदनः ।  
प्रतिलोमानुलोमाभ्यां परावरदृश मया ॥ २९ ॥

शब्दार्थ

एषः—यह; साङ्ख्य-विधिः—सांख्य ( वैश्लेषिक दर्शन ) की विधि; प्रोक्तः—कहे गये; संशय—सन्देहों की; ग्रन्थि—गाँठ; भेदनः—तोड़ने वाला; प्रतिलोम-अनुलोमाभ्याम्—सीधे और उल्टे दोनों ही क्रमों में; पर—आध्यात्मिकजगत; अवर—तथा भौतिक जगत की निकृष्ट स्थिति; दृशा—देखने वाले के द्वारा; मया—मेरे द्वारा।

इस तरह हर भौतिक तथा आध्यात्मिक वस्तु के पूर्ण द्रष्टा मैंने यह सांख्य ज्ञान कहा है, जो सृष्टि तथा संहार के वैज्ञानिक विश्लेषण द्वारा संशय को नष्ट करता है।

**तात्पर्य :** श्रीकृष्ण ने बतलाया है कि भौतिक मन जीवन की अनेक संकल्पनाओं को स्वीकार करता है और बहिष्कार करता है, जिससे सिद्धि की वास्तविक विधि के विषय में असंख्य झूठे तर्क उत्पन्न होते हैं। किन्तु जिस व्यक्ति ने भगवान् के चरणकमलों की शरण ग्रहण कर ली है, वह विमल बुद्धि के द्वारा सबकुछ देख सकता है। जो व्यक्ति यह समझ जाता है कि परमेश्वर किस तरह सृजन और

संहार करते हैं, वह भवबन्धन से मुक्त होकर भगवान् की नित्य सेवा में अपना समय बिता सकता है।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के ग्यारहवें स्कंध के “सांख्य दर्शन” नामक चौबीसवें अध्याय के श्रील भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद के विनीत सेवकों द्वारा रचित तात्पर्य पूर्ण हुए।